JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

दण्ड एवं दण्डनीति पर मनुस्मृति शुक्रनीति एवं अर्थशास्त्र में निहित विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अकीला आज़ाद
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

सारांश

प्राचीन भारतीय चिन्तन में मानव जीवन के विविध आयाम जैसे कि- सांस्कृतिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि माने गये हैं। मनुष्य के समस्त जीवन व कार्यकलापों का निर्माण इन्हीं तत्वों से मिलकर होता है। भारतीय चिंतन में राजनीतिक पक्ष को जीवन से संबंधित सभी तत्वों में से एक तत्व ही माना गया है। इसी कारण से मनुस्मृति, याज्ञवलक्य स्मृति, महाभारत आदि ग्रंथ एक आचार संहिता प्रस्तुत करते हुए उसमें ही राजधर्म को सन्निहित करते हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामान्दक का नीतिसार एवं शुक्र का शुक्रनीति सार भी इसी परम्परा का ही निर्वाह करते हैं। ये सभी ग्रंथ परम्परा से घनिष्ठ संबंध रखते हुए भी राजनीतिक व्यवस्था के निर्णायक महत्व को स्वीकार करते हैं तथा व्यवस्था के दार्शनिक पक्ष के साथ-साथ ये तकनीकी व क्रियात्मक पक्ष को भी महत्व देते हैं।

प्राचीन भारतीय चिन्तन में दण्ड एवं दण्डनीति का प्रयोग केवल संक्षिप्त अर्थों में शक्ति, दमन आदि के रूप में न होकर व्यापक अर्थों में किया गया है। इसमें सम्पूर्ण सामाजिक व राजनीतिक संबंधों से जिनमें सभी मूलभूत तत्वों के अतिरिक्त राजा, उसके मंत्री व सेना भी सम्मिलित है, उन सबका अध्ययन सम्मिलित है। दण्ड मुख्य तत्व होने के कारण इसे सभी विचारकों के द्वारा प्राथमिकता दी गई है। प्राचीन भारतीय चिंतन में दण्ड सम्प्रभुता शक्ति के प्रतीक के तौर पर माना गया है। 'मनुस्मृति' में दण्ड को ही राजा व वास्तविक शासक माना गया है। प्राचीन भारतीय सम्प्रभुता की अवधारणा को समझने के लिए दण्ड व दण्ड नीति का अध्ययन आवश्यक है।

प्राचीन भारतीय, चिंतन में अन्य महत्वपूर्ण अवधारणा धर्म है। धर्म की अवधारणा दण्ड व दण्डनीति से व्यापक रूप से संबंधित है। धर्म राज्य का आधार माना गया है। धर्म से ही सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था को समझा जा सकता है। अतः धर्म की अवधारणा को समझने के लिए दण्ड व दण्डनीति की अवधारणा को समझना आवश्यक है क्योंकि धर्म का पालन दण्डनीति पर निर्भर करता है। दण्ड को ही धर्म का आधार माना गया है। धर्म के

क्रियान्वयन हेतु एक बाध्यकारी राजसत्ता की स्थापना की आवश्यकता होती है जिसकी स्थापना का आधारभूत तत्व भी दण्ड ही होता है।

मुख्य शब्द - दण्ड एवं दण्ड नीति, धर्मशास्त्र, राजसत्ता, सम्प्रभुता, प्रतिकारात्मक दण्ड, निवारक दण्ड, सुधारात्मक दण्ड, क्षतिपूर्ति सिद्धांत।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय चिन्तन में जीवन के विविध पक्षों को पृथक-पृथक नहीं माना गया है अपितु एक समग्रतावादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है। लौकिक व पारलौकिक तथा अध्यात्मवाद व भौतिकवाद के मध्य परस्पर अन्तर्विरोध को स्वीकार न करके इन्हें मानव जीवन की यात्रा के महत्वपूर्ण पड़ाव माना है। प्राचीन भारतीय चिंतन में दण्ड व दण्डनीति का प्रयोग संकुचित अर्थों में नहीं किया गया है बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक व राजनीतिक संबंधों से संबंधित माना है। प्राचीन भारतीय चिन्तन में धर्म की अवधारणा का व्यापक स्थान है इसीलिये ही धर्म की अवधारणा दण्ड व दण्ड नीति की अवधारणा से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। धर्म की अवधारणा राज्य का आधार मानी गई है। धर्म एवं राज्य के लिए दण्ड व दण्ड नीति को आवश्यक माना है। धर्म की अवधारणा को समझने के लिए दण्ड की अवधारणा को जानना आवश्यक है, क्योंकि धर्म का पालन बहुत कुछ दण्ड पर निर्भर करता है। धर्म के क्रियान्वयन हेतु दण्ड आवश्यक है। एक बाध्यकारी राजसत्ता तथा उसके नियमों के पालन हेतु भी दण्ड एक आधारभूत तत्व है।

अध्ययन का उद्देश्य

मनुस्मृति, शुक्रनीति एवं अर्थशास्त्र में निहित राजनीतिक विचारों को स्पष्ट करने तथा दण्ड व दण्डनीति विषयक उनमें निहित विचारों को समझने एवं उनका तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना इस अध्ययन का उद्देश्य है। प्राचीन भारतीय चिंतन की दृष्टि से यदि राज्य का, राज्य की उत्पत्ति का अध्ययन करें तो मनुस्मृति, शुक्रनीति व अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। राज्य के अध्ययन के साथ ही दण्ड व दण्ड नीति का अध्ययन भी आवश्यक है, क्योंकि राजधर्म व दण्ड परस्पर संबंधित है। इन ग्रंथों में माना गया है कि राज्य का अस्तित्व दण्ड पर ही निर्भर है। धर्म व सम्पत्ति का महत्व भी दण्ड के साथ ही है। दण्ड के अभाव में धर्म व सम्पत्ति का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। प्रस्तुत अध्ययन में मनुस्मृति, शुक्रनीति व अर्थशास्त्र पर विषय के संबंध में शोध केन्द्रित है, क्योंकि ये ग्रंथ समग्र प्राचीन भारतीय चिंतन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत पत्र की अध्ययन पद्धति में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक व तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। मूल ग्रंथों में निहित विचारों की उपलब्ध विश्वसनीय लेखकों की पुस्तकों का गहन अध्ययन कर विश्लेषण व मूल्यांकन के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकाले गये हैं।

साहित्यावलोकन

विषय के अध्ययन हेतु प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारों से संबंधित कई पुस्तकों का गहन अध्ययन कर निष्कर्षों तक पहुँचने का प्रयास किया है। विषय पर उत्कृष्ट लेखन करने वाले लेखकों यथा- डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, डी.आर. भण्डारकर, डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी, हरीश चन्द्र शर्मा, कौशलकिशोर मिश्र, डॉ. मणिशंकर प्रसाद एवं प्रो. रामशरण शर्मा की पुस्तकों का मुख्य रूप से अध्ययन करने के साथ-साथ अनेक पत्र-पत्रिकाओं, अखबारों तथा अन्य संकलित व सम्पादित पुस्तकों में प्रकाशित विषय से संबंधित लेखों का भी अध्ययन किया है। इन सभी से विषय का एक तुलनात्मक अध्ययन किया जाना संभव हुआ है तथा प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारों को समझने में सहायता प्राप्त हुई है।

मनुस्मृति में दण्ड व्यवस्था

मनुस्मृति में दण्ड का अर्थ उस वैधानिक शक्ति व नियंत्रण से लिया गया है जिसके द्वारा अपकारकर्ता को दण्डित किया जाता है। दण्डनीति का अर्थ दण्ड के नियमों से है। मनुस्मृति में इस दण्डनीति की संहिता दी गई है। उसमें कहा गया है कि राजा की प्रयोजन सिद्धि व सब प्राणियों की रक्षा के लिए ब्रह्मा ने धर्मस्वरूप दण्ड को बनाया है। मनुस्मृति के अध्याय 7 में लिखा है कि आदिकाल में राजा नहीं होने से कोई न्याय व्यवस्था नहीं थी, ईश्वर ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा व कुबेर के सारभूत नित्य अंश लेकर राजा की सृष्टि की। राजा के साथ ही दण्ड की भी उत्पत्ति की। दण्ड के महत्व व आवश्यकता को दर्शाते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा की सहायता के लिए ही धर्म स्वरूप दण्ड को बनाया गया है, इसके भय से ही संसार में सब प्राणी धर्म का पालन करते हैं। "दण्ड ही वास्तव में राजा है। वही चारों आश्रमों का आधार है।" दण्ड को ही सम्प्रभु शक्ति माना गया है। दण्ड ही सब प्रजाओं पर शासन करता है और दण्ड ही सब प्रजाओं की रक्षा करता है। सभी के सोने पर भी केवल दण्ड ही जागता रहता है अर्थात् उसके भय से चोर भी नहीं आते।

मनुस्मृति में उल्लेख है कि राजा अपराध के अनुसार व अपराधी की सामर्थ्यता को देखकर दण्ड का प्रयोग करे साथ ही राजा को विरोधी को भी साम, दाम, दण्ड व भेद के उपायों से वश में लाना चाहिए।

मनुस्मृति में इस प्रकार से धर्म का क्रियान्वयन दण्ड द्वारा ही बताया गया है तथा सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए भी दण्ड को परम आवश्यक माना है। राजा दण्ड के माध्यम से प्रयोजन सिद्धि कर सकता है। दण्ड के भय से ही सभी प्राणी कार्य करने में समर्थ होते हैं। अगर दण्ड न हो तो बलवान दुर्बल से धन आदि छीन लेते हैं। दण्ड के अभाव में धर्म का क्रियान्वयन असंभव है। इस लोक में ही नहीं बल्कि परलोक में भी व्यक्ति धर्म का पालन दण्ड के कारण ही करते हैं। वैदिककालीन दण्ड व्यवस्था एवं मनुस्मृति की दण्ड व्यवस्था में समानता प्रतीत होती है। मनुस्मृति में दण्ड के अर्थदण्ड, वाग्दण्ड, कारागार दण्ड, वध दण्ड, देश निष्कासन आदि प्रकारों का उल्लेख मिलता है। दण्ड के सिद्धांतों में मुख्यतः दण्ड का वितरणात्मक, प्रतिकारात्मक निरोधक व क्षतिपूर्ति सिद्धांत का समावेश पाया गया है। मनुस्मृति में चोरी जैसे अपराध के लिए मृत्युदण्ड का प्रावधान है जिससे प्रकट होता है कि दण्ड व्यवस्था कठोर है, परन्तु फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि इसमें दण्ड का प्रयोग करते समय अपराध

की गंभीरता व अपराधी की सामर्थ्य व परिस्थितियों का ध्यान नहीं रखा गया है, वरन् मनुस्मृति में प्रथम बार अपराध करने पर वाग्दण्ड के प्रयोग के लिए कहा गया है। इसके अतिरिक्त बालक, रोगी, वृद्ध, गर्भिणी को दण्ड के योग्य नहीं माना है। निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि मनुस्मृति में प्राचीन भारत के विस्तृत दण्ड विधान का उल्लेख मिलता है।

शुक्रनीति में दण्ड व्यवस्था

शुक्रनीति में राजा को दण्डनीति का धारक बताया गया है। वह धर्म का रक्षक है। शुक्रनीति के अनुसार जो राजा दण्डनीति का समुचित रूप से पालन नहीं करता है अर्थात् दण्डनीय को दण्ड नहीं देता है, दण्ड के योग्य न होने पर उसे दण्ड देता है तथा अनावश्यक रूप से अधिक दण्ड देने का अभ्यासी होता है, उसका क्षय अवश्यम्भावी है। शुक्र ने दण्ड के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है जैसे फटकारना, बांध देना, नष्ट करना, पुर से निष्कासित कर देना, दाग लगाना, द्रव्य हरण कर लेना, गधे पर चढ़ाना, अंगछेदन करना, वध करना आदि। शुक्र ने दण्ड को असत् आचरण से निवृत्ति का साधन माना है। दण्ड के भय से प्रजा अपने धर्म में निरत रहती है तथा विविध प्रकार के अवैध, अनैतिक व समाज-विरोधी कृत्यों से विमुख रहती है। शुक्रनीति में उल्लेखित दण्ड के सिद्धांतों के अन्तर्गत निहित है कि दण्ड-पारण में निष्पक्षता का प्रत्येक परिस्थिति में पालन किया जाना चाहिए। अपराध करने पर गुरुजनों को भी दण्डित किया जा सकता है। दण्ड की मात्रा व प्रकृति का निर्धारण अपराध की गुरुता ओर प्रकृति पर निर्भर होना चाहिए। दण्ड का पारण, न्यायिक अधिकारी की निजि इच्छा, पूर्वाग्रहों अथवा मनोवृत्तियों से प्रभावित नहीं होना चाहिए तथा उसमें मानवीय संवेगों को नहीं अपितु तर्क, तथ्य, विधि के प्रावधानों व साक्ष्यों को ही आधार माना जाना चाहिए। दण्ड का पारण अपराधी के विरुद्ध दोष सिद्धि होने के पश्चात् ही किया जाना चाहिए। अपराधी को एक निश्चित प्रक्रिया के द्वारा ही दोष सिद्ध घोषित किया जा सकता है। ऐसी प्रक्रिया में अपराधी को स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का पूरा अवसर प्रदान किया जाना चाहिए तथा समुचित साक्ष्य के आधार पर ही उसके दोष का निर्धारण किया जाना चाहिए। शुक्रनीति में दण्ड के निवारक, प्रतिकारात्मक तथा सुधारात्मक तीनों प्रकारों को स्वीकार किया गया है।

शुक्रनीति में अपराधों की आवृत्ति व अन्तराल के आधार पर चार श्रेणियाँ बताई गई है-

1. सकृत्कृत (एक बार किया गया अपराध),
2. असकृत्कृत (बार-बार किया गया अपराध),
3. अभ्यस्तकृत (निरन्तर किया गया अपराध) तथा
4. स्वभावकृत (किसी व्यक्ति की सामान्यतः अपराधिक प्रवृत्ति हो जाना)।

इनके अनुसार ही शुक्रनीति में अपेक्षा की गई है कि किसी अपराधी के लिए दण्ड की मात्रा व प्रकृति का निर्धारण करते समय इन श्रेणियों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अपराधों की श्रेणियों का उपर्युक्त वर्गीकरण, अपराधों के विषय में शुक्रनीति के व्यवस्थित, व्यावहारिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।

अर्थशास्त्र में दण्ड और दण्डनीति

कौटिल्य ने दण्डनीति को केवल दण्ड देने वाली शक्ति ही नहीं माना है वरन् दण्ड में सम्पूर्ण सामाजिक व राजनीतिक सम्बन्धों को भी शामिल किया है। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि दण्ड की शक्ति को समुचित रीति से प्रयुक्त करने वाली राजसत्ता के अभाव में दुर्बलों की सुरक्षा असंभव है। राजा दण्ड के माध्यम से दुर्बलों को सुरक्षा प्रदान करता है। दण्ड वह भौतिक शक्ति है जिसका धर्म की प्रतिष्ठा के लिए प्रयुक्त किया जाना अभीष्ठ है। मत्स्य न्याय की अवस्था में भी शक्ति का प्रयोग होता था, किन्तु उसका प्रयोग धर्म के संरक्षण के लिए न होकर स्वार्थ-सिद्धि के लिए होता था। अतः दण्ड को शक्ति का पर्याय नहीं माना जा सकता है। दण्ड को शक्ति के प्रयोग की आधारहीन अनुमति के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। प्रयोजन व परिमाण शक्ति के साथ संयुक्त होकर उसे दण्ड के रूप में एक विशिष्ट स्तर प्रदान करते हैं। शक्ति के उसी प्रयोग को दण्ड की परिधि में स्वीकार किया जा सकता है जो प्रयोजन की दृष्टि से धर्म के हित में की गई हो, यह दण्ड का नैतिक पक्ष है। कोटिल्य के अनुसार अपराध का विनिश्चय और दण्ड का निर्धारण एक निर्धारित प्रक्रिया द्वारा ही किया जाना चाहिए। उसने दण्ड के प्रतिकारात्मक, निवारक एवं सुधारक तीन दृष्टिकोणों की विवेचना की है।

कौटिल्य का मानना है कि कठोर दण्ड देने वाले राजा से सभी प्राणी उद्विग्न हो उठते हैं किन्तु दण्ड में ढिलाई देने से भी व्यक्ति अवहेलना करते हैं। इसलिए राजा को समुचित दण्ड देने वाला होना चाहिए। भली-भांति सोच समझकर प्रयुक्त किया गया दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ व काम में प्रवृत्त करता है। कौटिल्य ने ज्ञान की चार शाखाओं का उल्लेख किया है। त्रयी, वार्ता, आन्वीक्षिकी व दण्डनीति। ज्ञान की इन चार शाखाओं को कौटिल्य ने विद्या का नाम दिया है। अर्थशास्त्र में ज्ञान की इन चारों शाखाओं को महत्वपूर्ण माना है, तथापि दण्डनीति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि वस्तुतः दण्डनीति ही त्रयी व वार्ता और उनके आन्वीक्षिकी के अनुसार नियमन के लिए अंतिम रूप से उत्तरदायी है। कौटिल्य के अनुसार यदि दण्ड नीति ना हो तो त्रयी, वार्ता या आन्वीक्षिकी का सुनिश्चित होना भी असंभव हो जायेगा। कौटिल्य ने चारों को परस्पर संबंधित माना है। उसके अनुसार दण्डनीति का कार्य आन्वीक्षिकी के मापदण्ड से अनुशासित व निर्देशित रहते हुए, व्यक्ति के जीवन के भौतिक (वार्ता के माध्यम से) और नैतिक (त्रयी के माध्यम से) उद्देश्यों के मध्य संतुलन बनाए रखना है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में सामाजिक व राजनीतिक विचारों का विस्तृत अध्ययन किया गया है। मनुस्मृति, शुक्रनीति एवं अर्थशास्त्र में भी हमें दण्ड व दण्डनीति, न्यायव्यवस्था पर विस्तृत वर्णन मिलता है। दण्ड का महत्व प्रायः सभी प्राचीन भारतीय ग्रंथों में दिखाई देता है। बी.के. सरकार ने भी कहा है कि- 'यदि दण्ड नहीं है तो राज्य भी नहीं है।' प्राचीन भारतीय विचारकों के द्वारा दण्ड संस्था को इतना महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है कि राजनीति शास्त्र के पर्यायवाची के रूप में दण्डनीति का प्रयोग किया गया है। अर्थशास्त्र के प्रथम अध्याय में उल्लेख है कि वह अपने ग्रंथ का नाम दण्डनीति रखना चाहता था। अर्थशास्त्र राज्यनीति पर लिखा गया ग्रंथ है। इन ग्रंथों में दण्ड को शक्ति का पर्याय नहीं माना गया है बल्कि दण्ड व शक्ति को अलग-अलग माना गया है। दण्ड को प्रयोजन व

परिणाम के आधार पर शक्ति से भिन्न माना गया है। दण्ड का प्रयोग उचित ठहराया गया है क्योंकि वह नैतिक प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाता है जबकि शक्ति स्वार्थ-पूर्ति के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है। मनुस्मृति में उल्लेखित है कि यह जगत दण्ड के भय से ही अपने कार्यों को करने में समर्थ रहता है। मनुस्मृति वैदिक परम्परा से पूर्व रूप से प्रभावित है, इस कारण इसमें निहित दण्ड संबंधी विचारों में धर्म का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दार्शनिक व धार्मिक पक्ष की अपेक्षा विशुद्ध राजनीतिक क्रियात्मक विचारों का अंश मिलता है। शुक्रनीति में दण्ड के विषय में कहा गया है कि दण्ड के भय से प्रजा अपने धर्म में निरत रहती है तथा अवैध, अनैतिक कृत्यों से विमुख रहती है। इन ग्रंथों में दण्ड व धर्म के मध्य घनिष्ठता बताई गई है। दण्ड व धर्म को एक-दूसरे का पूरक बताया गया है। उनके अनुसार दण्ड का अस्तित्व धर्म को क्रियान्वयन के लिए है। अतः धर्म की सत्ता की स्थापना हेतु दण्ड आवश्यक है। दण्ड धर्म की नैतिक सत्ता को एक भौतिक अवलम्बन प्रदान करता है जिससे धर्म का पालन हो सके। इसी प्रकार मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा धर्म का उल्लंघन कभी नहीं करे। अर्थशास्त्र में वर्णन है कि राजा धर्म विरुद्ध कानून नहीं बना सकता। शुक्रनीति में भी राजा से यह अपेक्षा की गई है कि वह धर्म के नियमों का पालन करते हुए ही दण्ड शक्ति का प्रयोग करें। तीनों ग्रंथों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय चिंतन में दण्ड का प्रयोग अपराध, अपराधी की सामर्थ्य व परिस्थिति को ध्यान में रखकर किये जाने का उल्लेख किया गया है। इन ग्रंथों में दण्ड के स्वरूप का मूल्यांकन करते पर ज्ञात होता है कि यद्यपि प्राचीन भारत में आधुनिक समय की अपेक्षा दण्ड व्यवस्था कठोर कही जा सकती है। फिर भी भारतीय चिन्तन की समग्रतावादी दृष्टि के कारण भारतीय चिन्तक ज्ञान की एक शाखा के रूप में दण्डनीति या राजनीतिक ज्ञान को, ज्ञान के अन्य स्तरों से अनिवार्यता जोड़ते हैं एवं ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के मध्य परस्पर अन्तनिर्भरता की स्थापना करते हैं।

सन्दर्भ

1. विद्यालंकार, सत्यकेतु , प्राचीन भारत की शासन संस्थाएँ और राजनीतिक विचार, श्रीसरस्वती सदन, मसूरी (उत्तर प्रदेश)
2. भंडारकर, डी.आर. , लेक्चर ऑन द एनशियन्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, 1919
3. चतुर्वेदी, डॉ. मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर
4. शर्मा, हरीशचन्द्र, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर
5. मिश्र, कौशल किशोर, प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन का इतिहास
6. प्रसाद, डॉ. मणिशंकर, कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार , मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, पटना , 1998
7. शर्मा, प्रो. रामशरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ , राजकमल प्रकाशन, जयपुर , 2007